International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232
Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 5; September 2017; Page No. 21-23

साहित्य और सिनेमा

[1] सत्यप्रकाश, [2] डॉ. ललित सिंह

[1] शोध छात्र (हिन्दी), नेट–जे.आर.एफ. हिन्दी, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट सतना, मध्यप्रदेश, भारत।

[2] एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी, महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट सतना, मध्यप्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

साहित्यकार समाज से जुड़ा होता है इसीलिये उनके साहित्य में समाज का यथार्थ चित्रण होता है। साहित्यकार समाज के यथार्थ को गद्य या पद्य के रूप में संकलित करता है और सिनेमा इसी साहित्य को चित्र के माध्यम से समाज के सामने दिखाने का प्रयास करता है। साहित्य समाज का व्यक्ति परस्पर एक दूसरे के अन्योन्याश्रित होता है। साहित्यकार साहित्य को समाज का निर्माता मानते हैं किसी भी राष्ट्र के जन की मानसिकता के बनने के पीछे उस देश के भूगोल एवं छोटी बड़ी घटनाओं, आस्थाओं व परम्पराओं के लम्बे इतिहास का हाथ होता है। समय बदलता है तो इसमें समय के साथ छोड़ा बड़ा बदलाव आता रहता है।

साहित्य और सिनेमा का बहुत ही बेजोड़ सम्बन्ध है क्योंकि बिना साहित्य के ना तो अच्छे समाज और ना ही सिनेमा की कल्पना नहीं की जा सकती है। साहित्य सिनेमा के लिए एक प्रकार का कच्चा माल (पृष्ठभूमि) तैयार करता है सिनेमा वही दिखाता है जो समाज में घटता है और साहित्यकार भी समाज पर ही कलम तोड़ लिखता है। अतः इसीलिये महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने कहा है–''साहित्य समाज का दर्पण है।''

समाज सिनेमा को लेकर भले ना चले लेकिन सिनेमाा ने समाज को ही लेकर अपनी यात्रा शुरू करते हुए यहाँ तक पहुँचा है। सिनेमा अपने लगभग 120 वर्षों की विकास यात्रा में इसने कई उबड़–खाबड़ तो कई सुनहररे पड़ाव भी देखे हैं। हम भी उन्हीं कुछ हीसन तो कुछ कुरूप हिन्दी सिनेमा के सफर को देखे और यह समझने की कोशिश करे कि हिन्दी सिनेमा समाज, देश और काल के साथ चलता हुआ आज कैसे सिर्फ मनोरंजन परोसने का एक माध्यम बन के रह गया है। ''कैसे हिन्दी सिनेमा से साफगोई गायब हो गई और सिर्फ मनोरंजन बेचता हुआ बाजार रह गया और समाज, देश, काल का असर लगभग लुप्त होता चला गया।''[1]

लोगों की यह मान्यता है कि सिनेमा ने समाज के रचनात्मक निर्माण में कला माध्यमों से अधिक सहयोग दिया है। सिनेमा और समाज ने हमेशा एक दूसरे से लिया है तो एक दूसरे को दिया भी है। कुछ लोगों का इसके विपरीत मानना है कि सिनेमा का समाज से कुछ लेना देना नहीं है। सिनेमाा का जो दर्शक होता है वह समाज एक इकाई होता है। इसलिए सिनेमा कभी–कभार उनकी बातों को आधार मानकर अपनी कथा को सृजित कर लेता है और दर्शकों के सामने प्रस्तुत करते हुए कहताा है कि सिनेमा समाज का आइना है। इन लोगों के अनुसार यह सत्य है कि सिनेमा सदा से मात्र एक प्रकार से मनोरंजन का साधन रहा है, जिसे दर्शक अपनी रोजमर्रा की समस्याओं से थोड़ी देर के लिए ही सही परन्तु मुक्ति पाने के लिए देखता है। ''सिनेमा वह माया संसार है जिसे दर्शक सामने पर्दों पर घटित हो रहे सपनों से सजी हुई दुनिया में अपने पसंदीदा कलाकारों के चरित्रों के साथ खो जाता है। उन लोगों की यह भी मान्यता रही है कि सिनेमा से किसी भी प्रकार के सामाजिक दायित्वों के निर्वाह की आाा करना एक मूल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।''[2] सिनेमाा जगत भी अपने मानदण्डों से अलग होता जा रहा है।

राष्ट्र भाषा के प्रचार प्रसार में हिन्दी फिल्मों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। दक्षिण में भले ही हिन्दी का विरोध हो परन्तु हिन्दी फिल्मों के गीत सर्वत्र गाये जाते हैं। मद्रास में बनने वाली फिल्मों में सर्वाधिक संख्या हिन्दी फिल्मों की है। हिन्दी के प्रति आस्थाभाव जागृत करने में फिल्में ही सशक्त सिद्ध हुई। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक सभी स्थितियों को आत्मसात करते हुये सिनेमा रचनात्मक माध्यम बना है। कविता, कहानी, उपन्यास, संस्मरण, रिपोतार्ज, रेखाचित्र सभी को सिनेमा ने एक अभिव्यक्ति दी है। साहित्य एवं कला के विभिन्न पक्ष सिनेमा के रूप में अपने संगठित प्रयास से अभिव्यक्ति प्रदान करने हैं। इस तरह कला एवं रचना के रूपों में एक ही धरातल पर प्रतिष्ठित करने का कार्य सिनेमा ने किया है ऐसी स्थिति में साहित्य और सिनेमा का जो सम्बन्ध है वह बहुत पुराना जान पड़ता है।

मणिकौल की तीन फिल्मों उसकी रोटी, आषाढ़ का एक दिन और पहले दो फिल्में भी मोहन राकेश की रचनाओं पर आधारित हैं। विमल मित्र (साहब बीबी और गुलाम) राजेन्द्र यादव का (सारा आकाश), मन्नू भण्डारी (आपका बंटी) जैसे कई नाम है जिनकी कृतियों पर सार्थक फिल्म बनी हैं। ''मनोरंजन की जगह उनकी शर्त संदेश व उद्देश्य को प्रधानता देना होता है इनमें मृणालसेन मृगया एक दिन प्रतिदिन, परशुराम, खारिज, खण्डहर) श्याम बेनेगल (अंकुर, निशान्त, मन्थन, भूमिका, जुनून, कलयुग मण्डी, आरोहन, सूरज का सातवा घोड़ा) प्रकाश झा (दामुल) सईपराजये (स्पर्श, चश्मे बद्दूर, कथा दिशा), मीना नायर (सलाम बाम्बे), विजया मेहता (पेस्टन जी रायसाहब) तथा कथात्मक ढांचे में फिल्में बनाने वाले अधिक जटिल फिल्मकार मणिकौल (उसकी रोटी, आषाढ़ का एक दिन, दुविधा, ध्रुपद सतह से उठा आदमी) कुमार शाहनी (माया दर्पण तरंग) इत्यादि शामिल होते हैं।''[3] भारतीय सिनेमा ने भारतीय भाषाओं की साहित्यिक कृतियों पर अनेक फिल्में बनाई गई है किन्तु कई बार रचनाकार उस फिल्म से इसलिए असंतोष प्रकट करता है कि उसकी कृति में मूल स्वरूप को सुरक्षित नहीं रखा गया।

भारत में फिल्मों का विकास यात्रा देखे तो इसका पहला युग सन् 1896 से 1930 तक है। यह मूक सिनेमा समय है। छोटी–छोटी आकस्मिक गतिविधियों को छोड़ दे तो मूक फिल्मों के निर्माता दादा साहब फाल्के को भारतीय सिनेमा का जनक माना जाता है। इन्होंने पहली मूक फिल्म हरिश्चन्द्र बनायी। 1931 में जब बोलती फिल्में ईरानी की 'आलम आरा' तेलगू में भक्त प्रहलाद तथा तामिल में कालिदास बनी तो फिल्मों का दूसरा उत्थान शुरू हुआ सन् 1931 से इस काल में बहुत विकास हुआ। काफी दिनों तक भारतीय

भाषाओं की फिल्में आदर्शवाद से प्रेरित होती थी और धीरे–धीरे यथार्थवाद की ओर झुकाव बढ़ा मार्क्सवाद का कुछ असर हुआ जो फिल्मों में शोषण–उत्पीड़न की पोल खुलने लगी ''जब साहित्य में प्रगतिवाद चरम पर था और इप्टा पूरे देश में फैला गया था। तभी फिल्मों में इस विचारधारा का प्रभाव दिखायी पड़ता है। इष्टा के मजे हुए कलाकार फिल्मों में आये थे। वे निर्माता, निर्देशक, अभिनेता और गीतकार के रूप में सक्रिय हुए।''[4] सन् 1960 के बाद फिम जगत् में बहुत ही परिवर्तन हुआ पहले से काम कर रहे निर्माताओं ने भी अपना दृष्टिकोण बदल लिया। वे केवल व्यापारी थे तथा वे भी जिन्हें फिल्में में रुचि थी और वे अच्छी फिल्मों के धनदाता के रूप में यशकामी ही थे। इससे अनेक प्रतिभाएँ सामने आयी। बीसवीं शताब्दी के ढलते–ढलते बहुत महंगे वित्तीय ढाँचे से फिल्में बनने लगी। बालीवुड़ दो नम्बर के पैसे के खे का अड्डा बन गया। उस जगत की मुख्य प्रवृत्ति बनी महंगी लोकप्रिय फिल्मों का निर्माण। इस तरह यह संसार दो हिस्सों में बंटा कला सिनेमा और लोक प्रिय सिनेमा।

द्वितीय विश्व युद्ध से भारतीय हिन्दी सिनेमा की कथावस्तु और प्रस्तुत की शैली ने भी करवट ले ली द्वितीय विश्व युद्ध का सबसे बड़ा और आश्चर्यजनक असर भारत के मध्यम वर्गीय लोगों पर पड़ा। उनके अन्दर जागरुकता आने लगी और वे अपने अधिकारों के प्रति सजग होते चले गये। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारतीय हिन्दी सिनेमा में काला धन का निवेश होने लगा जिसके परिणाम स्वरूप नए–नए धनाढ्य निर्माताओं का आना शुरू हुआ। इन नव धनाढ्य निर्माताओं के आने से पिछले दो दशकों से चल रही फिल्म निर्माण कम्पनियों और स्टूडियो में बहुत बंद होने लगे और कुछ अपने–अपने स्टूडियों को इन नये निर्माताओं का किराए पर देना शुरू कर दिया। फिल्मों का बजट बढ़ता गया और महंगे–महंगे आलीसान सेट्स से सजी–सवरी फिल्मों का निर्माण होने लगा।

ऐतिहासिक कथावस्तुओं पर आधारित फिल्मों के साथ–साथा आम मनोरंजक फिल्मों के निर्माण और गानो के फिल्मांकन पर भी अधिक धन का व्यय किया जाने लगा ''सन् 1941 में हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार भगवती चरण वर्मा के उपन्यास पर आधारित किदार शर्मा के गीत संगीत से भरी फिल्म 'चित्रलेखा' बनी थी, जिसकी प्रस्तुति में धन का अच्छा खासा धन व्यय किया गया था। इसी नाम से इसी फिल्म का पुनर्निर्माण बिदार शर्मा ने ही सन् 1964 में भी किया था जिसमें चित्रलेखा की मुख्य भूमिका मीना कुमारी ने निभाई थी। चालीस के दशक में बनी फिल्मों की एक और खस बात यह थी कि इस दौरान हिन्दी फिल्मों में गीत संगीत पर काफी ध्यान दिया जाने लगा था।''[5] द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रभाव पूरे भारत पर पड़ा चाहे वह फिल्मी दुनिया हो या फिल्म जगत हो।

सिनेमा अभिव्यक्ति का सर्वाधिक प्रभावशाली एवं सशक्त माध्यम है, जो किसी घटना एवं विचार को मनोरम ढंग से प्रस्तुत करता है। व्यक्ति के अन्तःकरण को सस्पर्शित कर उसे सकारात्मक दिशा की ओर अग्रसर करता है। सिनेमा मात्र मनोरंजन का साधना नहीं है अपितु वह अतीत का अभिलेख, वर्तमान का चेतरा और भविष्य की कल्पना है। सामाजिक परिवर्तन लोक जागरण तथा बौद्धिक क्रांति की दिशा ने भारतीय सिनेमा अविस्मरणीय है। यह एक ऐसा प्रभावकारी माध्यम है जिसने सभी उम्र के लोगों के मानस को झंकृत कर दिया है। राष्ट्रीय एकता, अछूतोद्वार, नारी जागरण, अन्याय, शोषण भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद जैसे राष्ट्रीय हित के प्रश्नों पर जन–जन को जागृत करने वाला माध्यम सिनेमा ही है।

फिल्मों को किसी एक दृश्य या संवाद से प्रभावित होकर दुर्दान्त अपराधी भी महात्मा बुद्ध बन जाता है। 'जागते रहो', 'नन्हा फरिस्ता' जैसी फिल्मों ने पत्थर दिल डाकुओं को भी अच्छा इन्सान बना दिया है, 'मदर इण्डिया', 'जिस देश में गंगा बहती', 'इंसानियत, दर्द का रिश्ता आदि फिल्मों ने दर्शकों के समक्ष अनेक ज्वलंत प्रश्नों का समाधान प्रस्तुत किया जिसे उसी रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

अमेरिका के मोशन पिक्चर एसोसियेशन से जुड़े मि.ऐरिक जानस्टन का कहना है ''सिनेमा आज के समाज में संवहन का सर्वाधिक प्रभावशाली माध्यम है जैसा कि यह शिक्षा और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावनाओं की वृद्धि का एक सबलतम साधन है। यदि यह कहा जाता है कि एक चित्र एक सहस्र शब्दों से अधिक मूल्यवान है तो निश्चय ही एक चलचित्र एक सहस्र चित्रों से अधिक गुणवान है।''[6] सिनेमा दृश्य–श्रव्य माध्यमों में एक दृश्य–श्रव्य माध्यम जिसे समाज के लोग बड़े सुगमता से ग्राह्य कर लेते हैं।

स्वतन्त्र भारत में अपने भविष्य के सुनहरे सपनों के ताने–बाने बुनने शुरू कर दिये थे। हर स्तर पर परिवर्तन की लहर सी चल पड़ी थी। समय के बदलते तेवरों के साथ–साथ सामाजिक रूढ़िवादी विचारों, रहन–सहन और राष्ट्रीय स्तर पर युवाओं की सोच में होता है बदलाव की झलक, स्वतन्त्रता के बाद की फिल्मों पर दिखाई देने लगी थी। स्वतन्त्र भारत के युवाओं का प्रतिनिधित्व करते हुए अभिनेता–निर्देशक राजकपूर ने सन् 1948 में अपने निर्देशन में पहली फिल्म 'आग' बनाई। फिल्म 'आग' एक प्रेमकथा पर आधारित फिल्म थी परन्तु इस फिल्म की शैली उस समय की अन्य प्रेम कहानी वाले फिल्मों से अलग थी। स्वतन्त्र भारत के नौजवान जीवन के हसीन सपनों और अपने उन सपनों को साकार करने के लक्ष्य में साथ राजकपूर नरगिस, प्रेमनाथ आदि कामिनी कौशल के भाव प्रधान अभिनय क्षमता से सजी सवरी फिल्म 'आग' से राजकपूर ने अपनी एक विशिष्ट शैली के कारण काफी लोकप्रिय हुए। इनकी ये यही अनोखी शैली और कला–क्षमता का असर उनकी हर फिल्म में देखने को मिलता है।

चालीस का दशक एक और जहाँ सामाजिक और राष्ट्रीय परिवेश में परिवर्तन का दशक रहा है वही भारतीय हिन्दी सिनेमा की शैली विषय–वस्तु और प्रस्तुति पर भी यह परिवर्तन साफ–साफ दिखाई देता है। हिन्दी सिनेमा पहले की अपेक्षा अधिक रूमानी होता चला गया है। रूमानी सिनेमा में प्रेम की अभिव्यकित के लिए गीतों का सहारा तो पहे से ही चला आ रहा था, लेकिन चालीस के दशक की फिल्मों में गीत अधिक सुरीले और अत्यधिक लोकप्रिय हुए। अतः निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि यह दशक गीत संगीत से भरे मनोरंजक फिल्मों की एक अलग शैली की शुरुआत का दशक रहा है। इस बात का प्रमाण यह है कि उस दशक के कई लोकप्रिय गीतों को लोग आज भी नए अंदाज में भारतीय और पश्चिमी संगीत में फैशन के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं जो युवक वर्ग को खूब आकर्षित कर रहा हैं अपनी लचर कथा और साधारण प्रस्तुत के बाद भी प्रस्तुत के बाद भी बहुत सी फिल्में गीत–संगीत की लोकप्रियता के कारण प्रसिद्ध हुई हैं। पूरी दुनिया में भारतीय फिल्मों की गीत–संगीत के कारण अपना एक अलग स्थान रहा है क्योंकि विश्व के किसी भी देश की फिल्में इस तरह गीत–संगीत पर आधारित नहीं होती जैसा कि भारतीय हिन्दी फिल्में हुआ करती है।

अतः निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सिनेमा का जन्म साहित्य से ही हुआ है। आज जिस प्रकार साहित्य में बदलाव होता नजर आ रहा है उसी तरह सिनेमा में भी बदलाव नजर आते हैं। साहित्य वर्तमान समय में व्यक्तित्व के मूल्यों को बनाए रखने में कहीं न कहीं कुछ न कुछ सम्भव है लेकिन वही सिनेमा समाज के व्यक्तित्व मूल्यों में बहुत गिरावट आई है।

सन्दर्भ

1. सिन्हा प्रसून, भारतीय सिनेमा, श्री नटराज प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, पृ.सं.84
2. वही, पृ.सं.85
3. डॉ.कृष्ण कुमार रत्नू, सूचनातंत्र एवं प्रसारण माध्यम : इक्कीसवी शताब्दी में बदली भूमिका, पृ.सं.197
4. अग्रवाल प्रहलाद, हिन्दी सिनेमा, साहित्य भण्डार चाहचन्द जोरो रोड़ इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2009, पृ.सं.13
5. सिन्हा प्रसून, भारतीय सिनेमा, श्री नटराज प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, पृ.सं.93
6. डॉ. देवेन्द्र नाथ सिंह, डॉ. विरेन्द्र सिंह यादव, भारतीय हिन्दी सिनेमा की विकास यात्रा एक मूल्यांकन, पैसिफिक पब्लिकेशन दिल्ली, संस्करण 2012, पृ.सं.02